अरुण देव की कविताएं

अरुण देव उन युवा कवियों में हैं जो वैचारिक बौद्धिक दुनिया में हस्तक्षेप करते हैं। औपनिवेशिक भारत में हिन्दी पर इनका खास काम है। *'क्या तो समय'* शीर्षक से कविता संग्रह प्रकाशित।

शास्त्रार्थ

लाओत्सु के दरवाजे पर
कृतज्ञता से भरे हुए कन्फूशियस की पदचापें थीं
लाओत्सु को यह सुगंध दूर से ही मिलने लगी थी

कहा जाता है लाओत्सु अस्सी वर्ष का गूढ़ अनुभव
और सम्मोहक करुणा लेकर पैदा हुए थे
तो कन्फूशियस ने सीधे चलते हुए
पा ली थी सहजता
यह ईसा के 600 वर्ष पूर्व की पृथ्वी थी
जब किसी दार्शनिक से मिलने
उतना ही महान दार्शनिक चला आता था

शाम घिर आयी थी

दोनों बैठे रहे एक दूसरे के सम्मुख
बाहर हरी दूब पर हंस रहा था चंद्रमा
अंदर दीये की लौ में निर्वाण की शीतलता थी

इस शास्त्रार्थ में शब्दों के जाल नहीं थे
जिसमें अक्सर फंस जाता था सत्य
न विजय की इच्छा थी
न पराजय का डर
सत्य की समझ का कोई अकेला भाष्य भी
किसी के पास नहीं था
एक विनम्र मौन से भर गया था वह कक्ष
जहां वे बैठे रहे
ऐसे ही देर रात तक निःशब्द

सत्य झर रहा था
पतझड़ के बाद जैसे पीले पत्ते बेआवाज।

यायावर

यह रास्ता कहां जाता है
रोशनी में डूबी दोपहर से
एक जोड़ी जूते ने पूछा
जूते के चेहरे पर यायावरी के गहरे निशान थे

फीकी मुस्कान लिए दोपहर ने
शाम की छतरी तान ली
शाम को रात में गिरना था
रात में जुगनू की लाठी पकड़े
उस एक जोड़ी जूते को फिर भी
कहीं जाना था

क्या कोई रास्ता कहीं जाता है?
रेत के समुद्र में उस कंटीली झाड़ियों से
पूछा था उसने
जहां दिशाएं एक दूसरे में गुम

किसी अंतहीन विस्तार में खो गयी थीं
घड़ी की टिकटिक से
जाना जा सकता था काल को
जिसकी पूंछ को खा रहा था उसका ही मुंह

दिशाहीन अनंत काल में यायावरी?

पेड़ पर पीठ टिकाये
उसका प्रश्न चिड़ियों की चहचहाहट में बदल गया था
जूते के तस्मे बांधते हुए
उसे पहाड़ी के उस पार जाना था

उसे अभी अपने से भी
पार जाना था।

सीख

सच चाहे अप्रिय ही क्यों न हो
कहते रहना अपने सबसे प्रिय से
यही एक रास्ता है दोनों को बचाने का

महत्वाकांक्षा की बर्बरता और लोभ के अंधड़ में
जाग्रत रखना अपना विवेक

संग्रह के ढेर और बाजार के शोर से हट कर
कभी वह संतोष भी पाना
जो छिपा रहता है संगीत, साहित्य और विचारों की कोख में

करते रहना प्रयास कि प्रेम
पशुओं और वनस्पतियों के लिए भी पनपे
जैसाकि वे अभी भी भूले नहीं हैं तुम्हें

देह की सुख साधना में
मन का अपरिग्रह भी सीखना
भारी मन लिए कहां कहां जाओगे?

उत्सव की रोशनी में
एकांत का मौन अगर सुन सको तो सुनना

यह न भूलना कि लौटाना है तुम्हें
हवा, जल, मिट्टी, आकाश
और बार बार लौटना भी है तुम्हें पृथ्वी पर
अपनी संततियों की आंखों में

यथार्थ की खुरदरी सतह पर
भविष्य के स्वप्न की गुंजाइश रखना

जो रह गये पीछे
बढ़ा देना उनके लिए हाथ
ये पुरखों की सीख है
इसे मैं दुहरा भर रहा हूं
कि भुला न दिया जाय कहीं